(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-27 फरवरी-2017 अंक-2

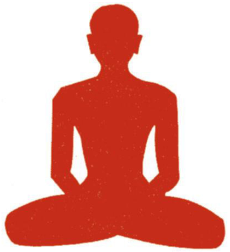

ध्यान द्वारा समस्याएं दूर

परमात्मा के ध्यान से मानव जीवन की सभी समस्याएं दूर हो जाती हैं।

जीवन की चार मुख्य इच्छाएं हैं - अखण्ड स्वास्थ्य, ज्ञान, आनन्द व प्रेम।

ये चारों ध्यान से प्राप्त किए जा सकते हैं। जिस प्रकार बच्चे का शरीर विकसित होता है, ध्यान करने से मनुष्य के अन्दर भी ये चारों विकसित होने लगते हैं।

हमारे शरीर की ग्रंथियां एक द्रव्य छोड़ती हैं।

जिससे कि अन्दर की नसों की सफाई होती है। ब्लड प्रैशर व हार्ट ब्लॉकिज खुलती हैं। ऐसा होने से स्वास्थ्य प्राप्त होता है। ध्यान के दौरान मन, परमात्मा के नजदीक पहुंच जाता है। इससे आत्मिक शक्ति संचार करती है। ध्यान करने से काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार धीरे धीरे स्वयं कम होने लगता है।

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

जिन्दगी की मास्टर कूंजी

- श्रीमती गुंजन गोयल (मो० 098962-69674)

एक बार किसी भीतर के जागे संत के पास अपने जीवन से व्यथित व परेशान हुआ एक व्यक्ति पहुंचा और उसके चरणों में प्रणाम करके बोला-

''गुरुदेव, मैं आपकी शरण में बहुत दु:खी इंसान पहुंचा हूं। मन का सताया हुआ हूं। मन के विकारों और विषयों के आगे खड़ा भी नहीं हो पा रहा हूं। कृपा करके मुझे इन विकारों से दूर कर दीजिए।''

संत ने कहा - ''विकार तो मन के साथ हैं। तुम एक विकार को दूर करोगे तो दूसरा प्रवेश कर जाएगा और इस तरह मन के विकारों को दूर करते करते सारी जिंदगी निकल जाएगी। परन्तु विकार वहीं के वहीं रह जाएंगे। इससे अच्छा होगा कि तुम मन से हटकर जियो; जिससे मन अपनी मालकियत छोड़कर तुम्हारे अनुकूल होता चला जाए और ये सभी विकार स्वत: ही दूर होते चले जाएंगे।''

यही जिंदगी की मास्टर कूंजी है। संत कबीर फर्माते हैं -

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजे हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर॥
जितनी समुद्र में लहरें उठती हैं-
उतनी ही मन में लालसाएं जन्म लेती हैं।
इन सबको पाने के लिए यह मन दौड़ता रहता है।
यह मन अगर सहज और शान्त हो जाए-
तो ज्ञान रूपी हीरे की प्राप्ति होगी, अर्थात
यह मन अज्ञानता की दशा में ही भटकता है-
यदि ज्ञान रूपी अनमोल खजाने को मन में बसा लिया जाए-
तो यह मन शान्त और स्थिर हो जाता है।
कबीर मन तो एक है, भाव तहां लगाय।
भावै प्रभु की भक्ति कर, भावै विष्य कमाय॥

उपासना

—महर्षि श्री ओम

भगवान के करीब जाने की विधि-उपासना है।

जब हम किसी के करीब आते हैं - तो स्वाभाविक रूप से उसके गुणों - अखण्ड शक्ति, अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड प्रेम और अखण्ड आनन्द; को हम आत्मसात करने लगते हैं। बुरे लोगों की संगत में बैठने से, हममें भी कुछ न कुछ बुरी आदतें आ ही जाती हैं और अच्छी संगत के करीब जाने से हममें, अच्छी आदतें आती हैं।

इसलिए हर मनुष्य को भगवान की उपासना करनी चाहिए।

भगवान की शरण में जाने भर से मनुष्य का कल्याण हो जाता है। भगवान के करीब आने से मनुष्य के विचारों में शुद्धता आ जाती है। ईश्वर के सान्निध्य में आने पर निराश मनुष्य भी आशावादी बन जाता है - जबकि दीनहीन व्यक्ति खुद को मजबूत समझने लगता है।

रामायण में लंका चढ़ाई के वक्त सेतु के निर्माण में रीछ वानर;

बड़े बड़े पत्थर उठाकर ले आए।

आखिर रीछ-वानरों में अचानक इतनी शक्ति कहां से आ गई? उन्होंने स्वयं को श्रीराम के प्रति समर्पित कर दिया और इसी कारण वे इतने बलशाली हो गए।

उपासना का मतलब स्वयं को भगवान के प्रति समर्पित करना है।

जब हमारे अंदर भगवान के प्रति समर्पण का भाव जाग्रत होता है - तो हमारे अहंकार का नाश होता है। तब हम अपने अहं से मुक्त होकर कण कण में एक ही सत्ता के दर्शन करते हैं।

एक मंदिर के प्रांगण में बैठे स्वामी विवेकानंद कुछ सोच रहे थे।

मंदिर से एक व्यक्ति बाहर निकला और स्वामीजी को प्रणाम करते हुए उसने पूछा कि; भगवान के दर्शन कैसे किए जा सकते हैं? स्वामीजी ने उससे कहा कि

जब आप भीतर से भगवान के दर्शन करके आ रहे हैं - तब यह प्रश्न क्यों? क्या आपने भगवान को केवल पत्थर की मूर्ति समझकर

निहारा था?

कुछ क्षण रुकने के बाद स्वामी जी ने आगे कहा कि; प्रत्येक व्यक्ति में भगवान विद्यमान हैं। यदि अंत:करण भूख से पीड़ित, कराहते हुए बीमार को देखकर द्रवित हो उठे - तो समझना चाहिए कि आप परमात्मा की ओर बढ़ रहे हैं। यह विश्वास करना चाहिए कि जीवन और मृत्यु, सुख और दु:ख आदि में ईश्वर समान रूप से विद्यमान हैं।

समस्त संसार ईश्वर का रूप है।

ईश्वर पूजा जीवात्मा की ही उपासना है। रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि

जिस प्रकार मैले दर्पण में सूरज का प्रतिबिंब नहीं पड़ता

उसी प्रकार मलिन अंत:करण में ईश्वर के प्रकाश का प्रतिबिंत नहीं पड़ सकता।

(1936-2009)

मैं कौन हूँ?

✍ डॉ० शम्भूनाथ

'मैं कौन हूं?' कहते हैं कि अध्यात्म जगत का यह प्रश्न उन व्यक्तियों के मन में अवश्य उठता है - जिनकी जीवात्मा उत्थान के मार्ग पर आगे बढ़ती है। यह भी कहते हैं कि

इस प्रश्न का उत्तर पूर्ण रूप से जान लेने के बाद -

तो कुछ जानने को बचता ही नहीं है।

इस लेख में इस प्रश्न का उत्तर लेखक अपनी चेतना से देंगे। लेखक की चेतना जो भी है - उससे उच्च स्तर की चेतना का व्यक्ति ही इस प्रश्न का उत्तर कुछ और ढंग से भी दे सकता है।

यह सृष्टि तीन क्षेत्रों में बंटी है। (1) क्रियाओं के क्षेत्र या ज्ञानेन्द्रियों का क्षेत्र, (2) भावों का क्षेत्र, और (3) भावातीत क्षेत्र।

भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field); ईश्वरीय शक्ति का समुद्र है। इस क्षेत्र से यह शक्ति भावों और क्रियाओं के क्षेत्र की ओर अग्रसर होने के लिए, इस तरह व्याकुल रहती है - जैसे वायु

शून्य की ओर बढ़ने के लिए व्याकुल रहती है।

ईश्वरीय शकित सब से सूक्ष्म स्तर की शक्ति है और स्थूल क्षेत्र में जाना चाहती है। लेकिन बिना किसी माध्यम के आ नहीं सकती।

ईश्वरीय शक्ति में चेतना और चैतन्यता दोनों हैं।

इस शक्ति का स्वभाव ही; इसकी इच्छा कहलायेगी। यह शक्ति, स्वयं इच्छापूर्ति की शक्ति के नाम से जानी जाती है। इसीलिए श्रीरामचरितमानस में इस शक्ति का परिचय इस प्रकार से वर्णित है:-

जो इच्छा करिहहु मन माहीं।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

अब यह समझना आसान हो जाता है कि; ईश्वरीय शक्ति के स्वभाव (या उसकी इच्छा पूर्ति के लिए) जो कुछ भी होना चाहिए-वह अपने आप प्रकृति में क्यों हो गया? प्रकृति में चौरासी लाख (अनन्त) जड़ों का जन्म हुआ - जो कि चौरासी लाख (अनन्त) योनियों के नाम से जानी जाती हैं। ऐसा केवल इसलिए हुआ-

> **जिससे कि ईश्वरीय शक्ति अपने क्षेत्र से क्रियाओं के क्षेत्र में अनन्त रूप से प्रगट हो सके। क्रियाओं का क्षेत्र भी अनन्त की शक्ति की ही देन है। इससे इस क्षेत्र की शक्ति सीमित रूप में नहीं प्रगट हो सकती।**

इन चौरासी लाख जड़ों के माध्यम से तीन तरह की चेतना प्रगट होती हैं :- (1) निर्जीव वस्तुओं की चेतना। (2) शक्तियों की चेतना। और (3) प्राणियों की चेतना। प्राणियों की चेतना में हमेशा सूक्ष्म और स्थूल; दोनों तरह की जड़ें होती हैं। जब तक दोनों तरह की जड़ों के माध्यम से शक्ति प्रगट होती रहती है - तब तक हम कहते हैं कि प्राणी जीवित है। जब सूक्ष्म जड़ें काम करना बन्द कर देती हैं और केवल स्थूल जड़ों के माध्यम से शक्ति प्रगट होती है - उस समय हम कहते हैं कि प्राणी की मृत्यु हो गई।

कहा जाता है कि मनुष्य तन बड़े भाग्य से मिलता है।

मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रयोग से बड़े बड़े काम कर सकता है।

यदि किसी मनुष्य के बच्चे को जंगल में फेंक दिया जाए और वह जानवरों के बीच पले - तो उसका शारीरिक और मानसिक विकास किसी जानवर से अधिक नहीं होगा। लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में जानवरों के बीच पला, एक मानव पुत्र लाया गया था - जिसमें मनुष्य की कोई आदत नहीं थी। वह आदमी की बोली भी नहीं बोलता था। कुछ महीने उसे इलाज में रखा गया; लेकिन जंगल के वातावरण से हटकर वह एक वर्ष भी नहीं जी सका।

असलियत तो यह है कि मनुष्य में ऐसी शक्ति है कि वह अपने भाग्य का विधाता बन सके। इसीलिए यह कहा गया है कि 'बड़े भाग मानुष तन पावा'।

भाग्य क्या है? मनुष्य बचपन से ही अपने मन में तरह तरह की इच्छाओं की उत्पत्ति अनुभव करता है। इन इच्छाओं की पूर्ति का आधार; प्रकृति की दो शक्तियां हैं **:**

व्यक्तिगत 'करने' की शक्ति और 'होने' की शक्ति।

यह होने की शक्ति क्या है? मनुष्य का जीवन वृक्ष रूपी होता है। जीवात्मा की तुलना पृथ्वी से की जाती है और उसकी शक्ति की तुलना वृक्ष के उस रस (Sap) से - जो कि पेड़ के जीवन को सब कुछ प्रदान करता है - तना, डाली, पत्ती, फूल और फल।

मनुष्य के मन में जो इच्छाएं हैं - वे पेड़ के बीज की तरह हैं -

जिनकी पूर्ति की तुलना फल से की जाती है। इच्छाओं और उनकी पूर्ति के बीच में कुछ समय के लिए जो क्रियाएं होती हैं - उनकी तुलना पेड़ के अलग अलग भागों से की जाती है।

पेड़ सबसे सरल जीवात्मा है।

इसलिए एक पेड़ में केवल एक ही तरह का बीज और फल होता है।

मनुष्य की जीवात्मा सबसे उच्च कोटि की होने के कारण -

इसे सब से उच्च कोटि का वृक्ष कह सकते हैं।

अन्तर केवल यह है कि इसमें अनन्त और अलग अलग तरह के बीज और फल

पाए जाते हैं। अलग अलग तरह के बीज अलग अलग इच्छाएं होती हैं। इन इच्छाओं के पूरा होने को अलग अलग फल कहते हैं।

ऊपर बताए हुए सिद्धान्त से हम समझ सकते हैं -

भगवान की शक्ति किस तरह की शक्ति है?

मनुष्य अपनी शक्ति को ध्यान द्वारा उभार कर अपनी अनन्त इच्छाओं को पूरा कर सकता है। हम सभी अपने जीवन में यह देखते हैं कि हमारी कुछ इच्छाएं तो पूरी होती हैं और कुछ पूरी नहीं होती।

आज का समाज यह समझता है कि हर मनुष्य को अपनी 'करने की शक्ति' बढ़ानी चाहिए और 'करने की शक्ति' बढ़ा कर अधिक से अधिक इच्छाओं को पूरा करने योग्य बन जाना चाहिए।

सत्य तो यह है कि जितनी 'भगवान की शक्ति', मन में उभरी होती है-

केवल उसके अनुपात में ही इच्छाएं पूरी की जा सकती हैं।

'करने की शक्ति' बढ़ाकर इच्छाओं की पूर्ति असम्भव है। महान सन्त दास मलूका ने भी यही बताने की कोशिश की थी - जब उन्होंने कहा था :-

अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।

दास मलूका कह गए सब करे दाता राम॥

सन्त मलूका ने राम शब्द का प्रयोग आत्मिक शक्ति के लिए किया है। यह वह शक्ति है - जिसकी व्याख्या पेड़ के रस (SAP) के रूप में ऊपर की गई है।

यह कोई नहीं बता सकता कि अमरूद के वृक्ष में फल हर 6 महीने में क्यों लग जाते हैं और आम में हर दूसरे साल क्यों लगते हैं? बिल्कुल इसी तरह, जो मनुष्य अपने भाग्य का विधाता बन सकता है-वह भी यह नहीं बता सकता कि; ध्यान द्वारा उभारी गई शक्ति उसकी किस इच्छा की पूर्ति, किस समय करेगी? इसलिए यह ईश्वरीय शक्ति 'होने की शक्ति' कही जाती है।

प्रसिद्ध है कि 'होनी' बहुत बलवान है

और टाली नहीं जा सकती।

असलियत तो यह है कि; यह शक्ति शुरू से ही पूर्ण रूप से तो केवल अवतार में

ही होती है। मनुष्यों में यह शक्ति किसी में कम और किसी में अधिक होती है। जिस अवस्था की शक्ति होती है- जीवन की उभरी हुई इच्छाओं की पूर्ति के लिए 'होने ' की शक्ति, वैसी ही योजना बनाती है। जीवन की अलग अलग घटनाएं उसी योजना के अनुसार घटने लगती हैं। जिसके अन्दर जागृत शक्ति अधिक होती है-उसकी इच्छाओं की पूर्ति के रास्ते पर, शक्ति के अनुपात में दु:ख की घटनाएं अपने आप कम होती हैं। इसके प्रतिकूल भी होता है-यानी यदि शक्ति बहुत कम होती है-तो इच्छाओं की पूर्ति के रास्ते पर कुछ दु:ख की घटनाएं भी अवश्य होती हैं।

अब हम इस स्थिति में हैं कि हम जान सकें कि; हम क्या हैं?

हम सभी प्राणी; दो तरह की जड़ों के मेल द्वारा भावातीत क्षेत्र की शक्ति को भावों और क्रियाओं के क्षेत्रों में प्रगट करने के माध्यम हैं।

शक्ति प्रगट हो - यह ईश्वर चाहता है।

स्वयं प्रकृति ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए - इन माध्यमों की उत्पत्ति की है। लेकिन जन्म के उपरान्त; कितने लोग ऐसे हैं-जिन्हें प्रकृति के इस खेल का ज्ञान है? कितने लोग प्रकृति के इस खेल में सहयोग देने में अपना समय लगाते हैं?

प्रश्न यह होता है कि; जो लोग सहयोग देंगे-उनके जीवन में क्या खास बात होगी; और जो सहयोग नहीं देंगे-उनके जीवन में कौन सी खास कमी आ जाएगी?

जैसा ईश्वरीय शक्ति के विषय में ऊपर हमने समझा; उसी को दूसरे शब्दों में एक बार फिर समझते हैं-जिससे हमारे मन में यह अच्छी तरह बैठ जाएं कि;

ईश्वरीय शक्ति क्या है?

मनुष्य को जीवन के हर पहलू में केवल सुख चाहिए। ईश्वरीय शक्ति सुख की शक्ति है। या यूं कहें कि जिस तरह, जिस मनुष्य के पास जितना पैसा है- वह उतना ही सामान खरीदने की शक्ति रखता है। ठीक इसी तरह

जीवात्मा के क्षेत्र में जितनी शक्ति उभर कर मन में घुल जाती है - केवल उतनी ही सुख की शक्ति उसके पास आ जाती है।

ईश्वरीय शक्ति; आध्यात्मिक सिक्का है-जो जीवन के अलग अलग पहलुओं

को सुख से भर देने की शक्ति रखता है - या यह कहें कि दु:ख को छीन लेने की शक्ति रखता है। बात एक ही होगी।

आज के समाज की ओर देखें-तो लगता है कि कोई धन को सुख का आधार मानता है, कोई शरीर की शक्ति को और; कोई बुद्धि की शक्ति को।

यदि हम इतिहास की ओर देखें-कौरव पाण्डवों के युग की ओर चलें-तो कोई अपने राज्य को शत्रुओं से बचाने की शक्ति में ही जीवन का सुख देख रहा है अथवा; तीर, विद्या में अति निपुण होने में और; कोई साम्राज्य पर अपना राज स्थापित करने में ही सुख ढूंढ़ रहा है। आज के समाज में हर मां-बाप के मन में यह बसा हुआ है कि; हमारी लड़की का सुख तो केवल अच्छे घराने में उसका विवाह होने पर निर्भर है।

इन सभी उदाहरणों में बिना सुख की शक्ति उभारे

सुख पाने की बात है और; यही बाहर की माया की जकड़ है।

दूसरे शब्दों में हमारा जीवन गलतफहमियों में जकड़ा हुआ है। भ्रम वश मनुष्य चाहता है कुछ -लेकिन पाता है कुछ और। कहने का अर्थ यह है कि; मां बाप को अच्छा दामाद मिल जाता है या लड़के को अच्छी नौकरी मिल जाती है-इससे पुत्री या लड़के का जीवन सुखी हो जायेगा-इसकी गारन्टी नहीं। पाण्डव तीर धनुष की कला में निपुण हो गए। लेकिन पाण्डव तो क्या-पाण्डवों के गुरु श्रीद्रोणाचार्य के जीवन से भी सुख क्यों भाग गया? कारण केवल एक ही है-जैसे बिना पैसे के सामान नहीं मिलता, वैसे

बिना आध्यात्मिक सिक्के के जीवन के अलग अलग पहलुओं के सुख नहीं मिलते।

चोर का जीवन हमेशा ही चोरी खुल जाने के भय से भरा रहता है-बिल्कुल इसी तरह **आज के समाज में लोगों का जीवन उतार चढ़ाव से भरा है-कभी सुख, कभी दु:ख लगा हुआ है।** जब सुख आता है-तो हम उसे रोकने का पूरी तरह प्रयत्न करते हैं। लेकिन यह प्रयत्न तो केवल वही कर रहा है-जिसके मन में अभी सुख के भागने का भय है। यह भय क्या है? हम समझते हैं कि सुख हमारे हाथ में; है ही नहीं। सत्य यह है कि जीवन दो तरह का है-

एक ऐसा जीवन जो सुख और दु:ख के चक्र से भरा है-

दूसरा वह जीवन-जिसमें समय बीतने के साथ साथ जीवन के हर पहलू में केवल सुख बढ़ता चला जा रहा है।

यह दो तरह के जीवन क्यों हैं और इन दोनों में क्या अन्तर है?

जीवन का आधार हमेशा आदान प्रदान रहा है। यह आदान प्रदान केवल मनुष्यों के बीच ही नहीं - बल्कि मनुष्य और प्रकृति के बीच भी होता है। जब हम पृथ्वी में बीज डालते हैं - तभी तो अंकुर फूटते हैं। जब जमीन को बीज मिलता है - तभी बीज में वृक्ष बनने की अपनी शक्ति प्रस्फुटित (Manifest) होती है। ठीक इसी तरह, जब मनुष्य के रूप में प्राणी आता है - तो उसमें यह शक्ति रहती है कि ईश्वरीय शक्ति को जीवन के अलग अलग पहलुओं में प्रगट कर सके।

बिना बीज बोए फल नहीं मिलता।

बिना ध्यान के अभ्यास के जीवन में सुख नहीं उभरता।

ध्यान के अभ्यास से ब्रह्म के तत्व उभर कर मन में घुलते हैं।

फिर मन में ब्रह्म के तत्व के गुण-सत्, चित् और आनन्द उभरते हैं।

सत्; ब्रह्म के तत्व का वह गुण है-जो जीवन को सदैव प्रगतिशील बनाए रखता है। ऐसे लोगों के जीवन में सुख के भाग जाने का भय क्यों नहीं खत्म हो जाएगा?

जो लोग इस रास्ते पर नहीं चलेंगे, उनके जीवन से सुख के भाग जाने का भय तो स्वाभाविक ही होगा।

प्रकृति ने हमें पैदा ही इसलिए किया है-जिससे कि हम भावातीत क्षेत्र से क्रियाओं के क्षेत्र में अधिक से अधिक शक्ति ला सकें।

जो मनुष्य; प्रकृति की इस इच्छा की पूर्ति में अपना सहयोग कर रहा है-उससे स्वयं शक्तिशाली प्रकृति आदान प्रदान क्यों न करेगी?

यदि हम ईश्वर का यह काम करें कि उसकी शक्ति को भावों और क्रियाओं के क्षेत्र में लाने में सहयोग करें-तो इसकी मजदूरी हमारे जीवन में आदान प्रदान के नियमानुसार जरूर मिलेगी। यह मजदूरी ही हमारे अलग अलग पहलुओं में सुख का रूप लेगी। यह आत्म धन हमारे ध्यान द्वारा कमाया गया है। चोरी से नहीं आया है।

अर्थात् ध्यान से प्राप्त स्वास्थ्य ही; अखण्ड स्वास्थ्य होगा।

यह स्वास्थ्य हमें, स्वयं अखण्ड दे रहा है। वह स्वास्थ्य; जो केवल अखण्ड के तत्व के उभार से मिला है-वह अगर वापस जाएगा भी-तो केवल तब; जब कि अखण्ड के तत्व का उभार दबने की स्थिति में आ जाए। लेकिन जो भी मनुष्य, केवल थोड़े समय (दस पन्द्रह साल) ध्यान का नियमित अभ्यास कर लेता है-उसके जीवन में तो यह अवस्था आती ही नहीं कि अखण्ड का तत्व उभरने के बजाय दबने लग जाए। दस पन्द्रह साल के अभ्यास से शक्ति उभरने के साथ साथ, जो आनन्द उभरता है-उसके कारण ध्यान 'करना'; 'होने' में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य को बहुत जल्दी ही; साधनाओं से मुक्ति मिल जाती है।

उसका स्वाभाविक स्वभाव ही 'साधना' का रूप ले लेता है।

स्वास्थ्य का उदाहरण देकर, अखण्ड स्वास्थ्य के विषय में ऊपर जो कुछ कहा गया-ऐसा ही जीवन के सारे पहलुओं में सम्भव है। सारे पहलुओं पर विस्तार से लिखना सम्भव नहीं, फिर भी जीवन के मौलिक पहलुओं में जैसे - शक्ति, आनन्द, ज्ञान, प्रेम और स्वास्थ्य में मनुष्य कैसे सदैव प्रगतिशील होता है, इस सिद्धान्त का दर्शन जीवन के अनन्त पहलुओं में सत्य होगा।

इस लेख का सारांश तो यह होगा कि बाहर की सृष्टि की रचना का आधार तो चौरासी लाख (अनन्त) योनियां हैं; जिनके माध्यम से ईश्वरीय शक्ति-क्रियाओं के क्षेत्र में प्रगट होती है। इन माध्यमों में मनुष्य प्राणी ही, सबसे उच्च कोटि का जीव है।

बाहर के क्षेत्र का आधार; आदान प्रदान का नियम है।

जो भी प्राणी प्रकृति के इस नियम का विरोध नहीं करता-दूसरे शब्दों में प्रकृति ने मनुष्य को जो शक्ति दी है कि

कर्म के माध्यम से वह अधिक से अधिक शक्ति प्रगट करे

यदि मनुष्य इस शक्ति को प्रकृति की इच्छा की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करता है-तो ऐसे प्राणी के जीवन में प्रकृति; वह सब कुछ देती है-जो प्राणी चाहता है। लेकिन वह प्राणी कर्म का प्रयोग दूसरे क्षेत्रों में करके; केवल सुखी बनने का

उद्देश्य जीवन में रखता है-दूसरे शब्दों में वह जीवन के सुख को आध्यात्मिक सिक्के के अलावा किसी दूसरे सिक्के द्वारा पाना चाहता है-तो वह प्रकृति की दृष्टि में चोर के समान है और; उसके जीवन में सुख के भागने का भय हमेशा ही बना रहेगा। श्री भ० गीता के तीसरे अध्याय के बारहवे श्लोक

'स्तेन एव सः'-वह चोर है

ऐसी जो बात कही गई है- उसकी टिप्पणी वह है-जैसा कि ऊपर बताया गया है।

एक सुहाना व सत्य अनुभव

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (मो० 09991846415)

वो मेरे करीब आए-क्यों?

क्योंकि; शायद मैं भगवान् के थोड़ा करीब हूं।

बड़ी प्यारी घटना हुई-वो मेरे करीब आए।

बड़ा अच्छा लगा। क्योंकि इसमें भी भगवान् के दर्शन हुए।

तीन दिन पहले एक साथ हमने सिंगापुर मलेशिया की सैर के दौरान सफर किया। थोड़ी दुनियां की बातें हुईं और वो अपने रास्ते चले गए। हम अपने रास्ते आ गए।

तीन दिन बाद देखो, इतनी दूर सिंगापुर मलेशिया में फिर हमारा एक साथ मेल हुआ। हमारा उस दिन सिंगापुर मलेशिया में ही सफर का अंतिम दिन था - उनका अभी तीसरा दिन था। उनकी उम्र मेरे से 20 साल कम थी। मुझे पूछा - आंटी!

आपको यहां का खाना, रहना, घूमना- सब कैसा लगा? आपने क्या enjoy किया या कोई शिकायत रही?

मैंने सच में जो महसूस किया-उसके अनुसार बोला-सब कुछ wonderful।

उन्होंने कहा - खाना? मैंने कहा- फ्रूट, जूस; हर जगह था। शाकाहारी होने की वजह से थोड़ा दिक्कत होती है-लोगों को। पर हम तो मेरठ वालों को follow करते हैं। भगवान् का ध्यान करते हैं - तो वैसे ही खुश और भरे पेट रहते हैं। यह

सुनकर कहता है-आंटी! आपके पास क्या है-जिससे आप यह कह रहे हो-सब कुछ बहुत अच्छा हुआ और कोई भी शिकायत नहीं?

फिर मैंने रास्ते में, आधा घण्टे के सफर में ही; ध्यान का बताया। मियां बीवी ने बड़े ध्यान से सुना। कई प्रश्न किए और मेरा फोन नम्बर लिया।

आंटी; हम आपके टच में रहेंगे। क्या आप हमें बताते रहोगे?

क्या यह मेरा टच मांग रहे थे?

नहीं; यह सब ध्यान का कमाल है।

यह उस ईश्वर का कमाल है। यह शक्ति है ही ऐसी-सब तरफ अच्छा ही अच्छा दिखता है और अच्छा ही अच्छा होता है। परिस्थितियां तो उनकी वही थीं-बल्कि हमारे से बहुत अच्छी-उम्र कम, कोई शरीर में कमी नहीं। खाना, उनको भी वही मिल रहा था। परन्तु वो उसमें कमी का अहसास कर रहे थे। मेरी बात के बाद उनको अपनी सोच पर अफसोस हो रहा था। यह सब उन्होंने खुद बताया। फिर मैंने उनको रास्ते में ध्यान का तरीका बताया और कहा कि; अब तुम हवाई जहाज पर जाने वाले हो - वहां इसका अनुभव करना।

आज से आपकी सोच और दुनियां, बदलनी आरम्भ हो जायेगी।

भगवान् की कृपा से, किसी को इस मार्ग पर ला दिया। मैं बड़ी खुश हूं और भगवान् का धन्यवाद करती हूं कि एक अच्छा कार्य ईश्वर ने करवा दिया। सो सभी से प्रार्थना करूंगी कि आप भी आज से नहीं-अभी से ध्यान आरम्भ करो और जीवन आनन्दमय बनाओ।

करना क्या है?

बस-दिन में तीन बार आंख बन्द करके, एक बार भगवान् का नाम (जो आपको पसन्द हो), लेकर बैठ जाओ। हो गया-आपका ध्यान आरम्भ। बस नंगी जमीन पर नहीं बैठना-और कहीं भी बैठो-जमीन पर बैठो-तो आसन बिछा कर। अन्यथा ऊर्जा Earth हो जाएगी।

है न कितना आसान?

फिर जिन्दगी भर; आराम ही आराम।

ध्यान साधना; एक आन्तरिक उड़ान

✍ श्री चुरंजी लाल राजपाल (09813251999)

पहले जमाने में अपने आपको जानने या आनन्द की प्राप्ति हेतु;

ऋषियों ने साधना को चार भागों में बांटा था :-

1) **चींटी मार्ग** (पैदल चलना) - मन्दिर में पूजा अचर्नना करना।

2) **मकड़ी मार्ग** (साइकिल से चलना) - इसमें समय कम लगता है - नाम जप।

3) **मछली मार्ग** (मोटर साइकिल, स्कूटर व कार से) - इसमें समय और कम लगता है - श्वांसों से जप करना।

4) **विहंगम् मार्ग** (हवाई जहाज या रॉकेट से शीघ्र सफर करना) - ध्यान (Meditation) व समाधि

इसलिए सभी सन्त; इन चारों मार्गों की मनाही नहीं करते। पर इस पर साधक ने स्वयं सोचना है और फैसला भी खुद ही करना है कि किस मार्ग को अपनाऊं?

श्रीमद्भगवद् गीता में (18.66) के अनुसार :-

तज धर्म सारे, एक मेरी ही शरण को प्राप्त हो।

मैं मुक्त पापों से करूंगा, तू न चिन्ता व्याप्त हो॥

इसका अर्थ यह है कि आंख कान बन्द करके अन्धेरे में कुचालक यानी कपड़ा, मृग छाल बिछा कर ध्यान साधना में बैठें। यहां मैं तभी प्रभावित हुआ-जब डॉ० शम्भु नाथ ने कहा कि जिस देवता पर आपको विश्वास हो; उसका एक बार नाम लेकर कम से कम तीस-तीस मिनट के लिये सवेरे उठते समय और शाम को सोते समय ध्यान करो। यह आपका अपना समय है। कोई कठिनाई नहीं आयेगी। यही सहज ध्यान है। ध्यान की साधनायें अनेक हैं। पर मुझे तो यह सहज ध्यान इसलिए पसन्द आया कि कुछ करना नहीं। इस वक्त कोई किसी आदमी का दखल नहीं होता। यह अपना समय ही अपने लिए है। इससे क्या होगा? उसका फल यह होगा -

जो इच्छा करि हौ मन मांहीं।

प्रभु प्रसाद कछु दुर्लभ नांही॥

सत्संग; चेतना जागृति में सहयोगी

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

समाज में नित्य मनुष्य चेत और अचेत अवस्थाओं में आता जाता है। उसे इस बात का ज्ञान है कि अचेत अवस्था में सृष्टि की कोई भी शक्ति किसी के काम नहीं आती। मात्र चेत अवस्था में अलग अलग व्यक्ति अलग अलग विषयों के क्षेत्र में अपनी चेतना के आधार पर उस क्षेत्र की शक्ति का प्रयोग करता है। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि जिस व्यकित की जिस क्षेत्र में जैसी चेतना की जागृति होती है - उस क्षेत्र की केवल उतनी ही शक्ति वह प्रयोग में ला सकता है। यही कारण है कि अलग अलग क्षेत्रों में (भले ही वे क्षेत्र मात्र इन्द्रियजगत के हों या दिव्यजगत के शक्तियां अपार हैं।

लेकिन इन शक्तियों के प्रयोग की क्षमता अलग अलग व्यक्तियों की चेतना की जागृति पर ही निर्भर करेगी। जो मनुष्य पांच इन्द्रियों की चेतना में ही जीवन का सब कुछ देखने की कोशिश कर रहा है - वह जीवन के सुख दु:ख से परे कभी नहीं हो पाता। जीवन के तरह तरह के दु:खों को उसे भोगना ही पड़ेगा। जीवन के कष्ट मनुष्य को कष्टदायी ना हों; इसके लिए उसको आन्तरिक चेतना की जागृति प्राप्त करनी पड़ती है। यही अध्यात्म है।

आन्तरिक चेतना की जागृति के दो रास्ते हैं :-

(1) प्रयासहीनता का अभ्यास-(ध्यान)

(2) आन्तरिक जगत के विषयों पर व्यक्तिगत वार्तालाप, जिसे मनुष्य सत्संग कहता है। भ० गीता कहती है कि -

आन्तरिक चेतना की जागृति के दो रास्ते हैं-संख्य और योग।

लेखक का कहना है कि प्रयासहीनता (ध्यान) का अभ्यास ही योग है।

लेकिन अभ्यास (Meditation) द्वारा जागृति पैदा करने के साथ साथ; जीवन के अलग अलग पहलुओं के सुख और दुख पर वार्तालाप (सत्संग) भी मनुष्य की

चेतना की जागृति में बहुत मदद करती है। इसी आधार पर भारत जैसे आध्यात्मिक देश में अलग अलग समय के आध्यात्मिक पुरुष; समाज के उन व्यक्तियों के लिए जो उनके सम्पर्क में नहीं आ सकते; जीवन के अलग-अलग पहलुओं के ज्ञान को पुस्तकों द्वारा समाज तक ले जाते रहे हैं।

आत्मसत्ता का प्रभाव; हर चेतना पर

हम देखते हैं और जानते हैं कि आग का स्वभाव हर चीज को जलाना है; लेकिन अध्यात्म का इतिहास यह बताता है कि

1. सीता ने अग्नि परीक्षा दी। जिसका अर्थ यही है कि अग्नि सीता को जला नहीं सकी।

2. पूरी लंका जल गई, लेकिन लंका जलाने वाले हनुमान की पूंछ नहीं जली।

3. होलिका को आग में न जलने का वरदान था; फिर भी होलिका जल गई और प्रहलाद बच गए।

ये अध्यात्म के इतिहास के चमत्कार नहीं हैं,

बल्कि साधना की अवस्थाओं का वर्णन है।

सीता और प्रहलाद की चेतना और आग की चेतना के सामंजस्य का उदाहरण है। उपरोक्त; गीता और रामायण के कथनों की पुष्टि करते हैं। अग्नि भी देवगण में आती है और सीता और प्रहलाद जैसे ईश्वर भक्त अग्नि की उन्नति करते हुए अग्नि की चेतना से ऐसा सामंजस्य पैदा कर सकते हैं।

यह परियों की कहानी जैसी काल्पनिक बातें नहीं हैं, बल्कि उच्च स्तर के उन साधकों की चेतना की अवस्था का वर्णन है, जिस स्तर के साधक हर युग में नहीं पाए जाते।

विद्यार्थी जब प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की तैयारियां करता है; तब कम से कम फेल होने की सम्भावना नही रहती। इसी प्रकार से जब आज के युग के साधक ध्यान की साधना की उपरोक्त सम्भावनाओं से प्रेरित होकर; अपना ज्यादा से ज्यादा समय इस साधना पर न्यौछावर करेंगे - तो वे आग से सामंजस्य पैदा करने की अवस्था तक भले ही न पहुंच सकें; लेकिन कम से कम अपने परिवार के व्यक्तियों, अपने साथियों, अपने खाने की वस्तुओं या यह कहें कि उन सबकी

चेतना – जिनके सम्पर्क में वे अपने नित्य के जीवन में इन्द्रीय सुख हेतु आते रहेंगे; से सामंजस्य की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

निश्चय ही उनका और समाज का जीवन धीरे धीरे केवल सुख की ओर अग्रसर होता ही चला जाएगा।

यही सारे अध्यात्म के शिक्षकों का उद्देश्य है और सामाजिक प्राणियों की मांग है। एक शंका उठती है;

कि क्या सीता और प्रहलाद की साधना से अग्नि ने मात्र इन दो विशेष व्यक्तियों के लिए अपना स्वभाव बदल दिया था? अग्नि में चेतना है लेकिन बुद्धि है – ऐसा नहीं लगता। फिर अग्नि ने इनको जलाने से क्यों पीछे छोड़ दिया?

इसका उत्तर यह है कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि अग्नि में हर वस्तु को जलाने की ताकत है। कुछ को जलाकर राख कर देती है – जैसे कागज, लकड़ी इत्यादि। कुछ को आग स्वरूप बना देती है, लेकिन समाप्त नहीं कर पाती–जैसे लोहा। कुछ वस्तुों का रूप भी बदल जाता है, वे ठोस से द्रव में परिवर्तित हो जाती है। ठंडक पाने पर वे फिर अपने असली रूप में आ जाती है – जैसे बर्फ;

लेकिन सृष्टि में मात्र पानी की चेतना एक ऐसी चेतना है; यदि उसे बर्तन की कैद से स्वतंत्र कर दिया जाए तो पानी का प्रभाव अग्नि पर पड़ेगा और अग्नि बुझ जाएगी, लेकिन अग्नि की चेतना का प्रभाव पानी पर नहीं होता।

इसी प्रकार यह समझना आसान होगा कि मात्र 'आत्मसत्ता की चेतना' पर सृष्टि की किसी भी चेतना का प्रभाव नहीं पड़ता; यद्यपि इस चेतना का प्रभाव हर चेतना पर पड़ता है। इसीलिए –

यदि एक साधक अपनी साधना के माध्यम से अपने शरीर को इस शक्ति से तर बतर करने में सफल हो जाए – तो ऐसे शरीर पर अग्नि अपना प्रभाव कैसे डालेगी?

मात्र ऐसे शरीर अग्नि परीक्षा देने योग्य होते हैं।

आत्मसत्ता पर किसी का प्रभाव नहीं।

आत्मसत्ता हर चेतना को प्रभावित करती है। समस्त ब्रह्माण्डों की चेतना पर इस आत्मसत्ता का प्रभाव ऐसा पड़ता है कि अलग अलग चेतना में मात्र सामंजस्य बढ़े – जिससे कि ब्रह्मज्ञान के विद्यार्थियों के विद्या ग्रहण करने में कोई बाधा न पड़े। ऐसा प्रकृति का स्वभाव है;

स्वयं ब्रह्म की इच्छा है और इसी कारण ब्रह्म द्वारा रचे हुए इस यज्ञ को यह शकित मिली है। इस यज्ञ के माध्यम से मनुष्य समस्त चेतनाओं में सामंजस्य पैदाकर के मृत्युलोक के सारे ब्रह्मज्ञान के विद्यार्थियों को इस विद्या के ग्रहण करने के लिए ज्यादा से ज्यादा अच्छी परिस्थितियां प्रदान करें। ❑

ईश्वर की सेवा कैसे करें ?

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

भिन्न भिन्न लोग ईश्वर की सेवा के अलग अलग अर्थ लगा सकते हैं।

जिस स्तर का जिसका ज्ञान है; उसी स्तर का उसका अर्थ होगा और उसी स्तर का उसकी ईश्वर की सेवा का फल होगा। इस विषय पर लेखक अपने स्तर की बात कहना पसन्द करेगा। यदि कोई ईश्वर की और उसकी सेवा का भिन्न अर्थ लगाना चाहे – तो लेखक का उससे कोई विरोध नहीं है।

ईश्वर असीम है। ईश्वर की शक्ति (इच्छापूर्ति) भी भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) के रूप में असीम है।

सीमित इन्द्रियों वाला व सीमित ज्ञान वाला कोई भी व्यक्ति उस असीम को अपनी चेष्टा से कैसे प्राप्त कर सकता है?

यदि हम निष्कपट हृदय से उन्हें प्रसन्न करेंगे अर्थात् उनकी भक्ति (Meditation) करेंगे तो भगवद् ज्ञान की प्राप्ति स्वत: हो जायेगी।

ईश्वरीय शक्ति सभी में इच्छापूर्ति शक्ति के रूप में विराजमान है। इसलिए यदि अध्यात्म जगत यह कहे कि हमारी सारी इच्छाओं को पूरी करने वाला ईश्वर है – तो इसमें क्या गलत है?

लेकिन चेतना की कमी और अध्यात्म शिक्षा की कमी के कारण, अध्यात्म जगत के इस वाक्य का दूसरा अर्थ अपने आप निकल आता है और वह यह है कि शायद ईश्वर कहीं पर है और सब कुछ देख रहा है। जिससे खुश है – उसकी

इच्छा पूरी कर देता है और जिससे खुश नहीं है – उसकी इच्छाओं को पूरी नहीं करता। इस तरह की बातें आज के समाज में फैलती जा रही हैं। इसका कारण केवल समाज की निम्न स्तर की चेतना (Low level of consiousness) है।

लेकिन ईश्वर की सेवा के लिए तो जानना अवश्यक है कि उसकी इच्छा क्या है ?

भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) की शक्ति, भावों और क्रियाओं के क्षेत्र की ओर अपने स्वभाव से ठीक इस तरह आती है – जिस तरह हवा अपने स्वभाव से शून्य की ओर दौड़ती है। यदि हम हवा के स्वभाव को हवा की इच्छा कह दें – तो इसमें क्या गलत है?

ईश्वरीय शक्ति, जो कि प्रकृति में सबसे बड़ी शक्ति है – उसका स्वभाव ही तो ईश्वर की इच्छा होगी। केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उसने चौरासी लाख अर्थात् अनगिनत योनियों को जन्म दिया है। इन योनियों में स्थूल जड़ें और सूक्ष्म मन हैं – जिनके माध्यम से यह शक्ति बाहर की दुनिया में केवल ईश्वर की इच्छा से प्रगट हो रही है।

ईश्वर की इच्छा क्या है?

भगवान की शक्ति अनुभव के क्षेत्र में सच्चिदानन्द के रूप में प्रगट होती है। ईश्वरीय शक्ति निर्जीव में भी है और प्राणी में भी।

निर्जीव में ईश्वरीय शक्ति का गुण; न बदलने वाले के रूप में है। लेकिन प्राणी में यह शक्ति अखण्डता का रूप धारण कर लेती है। अखण्डता का अर्थ केवल आगे बढ़ने वाला (Progressing) है। कोई भी जीव ऐसा मिल ही नहीं सकता – जो अपने क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ना चाहता। क्षेत्र चाहे इन्जीनियरिंग का हो, राजनीति का हो या अध्यात्म जगत का। आगे बढ़ने की यह इच्छा सभी में है। इसका कारण केवल यह है कि ईश्वर सब में है। इस तरह हम अच्छी तरह समझ लेते हैं,

यह ईश्वर की इच्छा है कि कैसे ईश्वरी शक्ति क्रियाओं और भावों के जगत में अधिक से अधिक तीव्र गति से प्रगट हो सके?

ईश्वर की इस इच्छा में हाथ बटाना अगर ईश्वर की सेवा नहीं है – तो और क्या है ?

जैसा कि हम लोग ऊपर देख चुके हैं; सेवा के क्षेत्र में महत्व दो चीजों का है –

1) क्षमता का और 2) उस स्तर का जहां से सेवा की क्रियाएं हमारे जीवन में प्रतिक्रिया के रूप में वापस आ सकें।

दोनों का महत्व ऊपर समझाया जा चुका है। समझते समय हम लोगों ने देखा कि शारीरिक बल और बुद्धि की शक्ति के स्तर की सेवाएं तुलनातमक दृष्टि से उतना बड़ा प्रभाव जीवन में नहीं दिखा सकतीं – जितना कि आत्मबल के माध्यम से की गई सेवाओं का प्रभाव होता है। कहने का अर्थ केवल यह है कि शारीरिक और बुद्धि के स्तर की शक्तियों के माध्यम से की गई सेवाएं, जीवन को कुछ सुखदायी बना सकती हैं।

लेकिन दुःख से परे करने की क्षमता तो केवल आत्मबल के माध्यम से की गई सेवाओं में ही है।

'ध्यान' का महत्व यहीं से शुरू होता है। इसकी पुष्टि रामायण की व्याख्याओं द्वारा होती है – यह कहा गया है कि मनुष्य को सब कुछ छोड़कर सुमिरन (ध्यान) करना है। ऐसा सिर्फ इसलिए लिखा है – क्योंकि दुःख से परे होने की बात किसी और तरह सम्भव; है ही नहीं।

ईश्वर की इच्छा केवल यही है कि ईश्वरीय शक्ति – जो सब से सूक्ष्म जगत की शक्ति है; स्थूल जगत की ओर अधिक से अधिक तीव्र गति से कैसे प्रवाहित हो? ईश्वर की इस इच्छा को पूरा करने में व्यक्तिगत योगदान ही ईश्वर की सेवा है। संत कबीर जी फरमाते हैं :-

कबीर 'सूषिम' सुरति का, जीव न जानै जाल।
कहै कबीरा दूरि कर, आत्म अदिष्ट काल॥

अर्थात् सूक्ष्म सुरति में वह कौशल है – जिसके द्वारा साधक सरलता से प्रभु तक पहुंच सकता है। सूक्ष्म का तात्पर्य है कि वह सर्वथा आन्तरिक सुमिरन (Meditation) करे, स्थूल जप नहीं है। बेचारा जीव उसके इस कौशल को ही नहीं जानता है। यदि वह उसके इस कौशल को जान जाए; तो सूक्ष्म सुरति (Self Realization) का ऐसा प्रभाव है कि वह अपने दुष्ट और संहारक शक्ति – दोनों पर विजय प्राप्त कर सकता है। कबीर कहते हैं कि हे जीव, उसे जानकर तू अपने अदृष्ट और काल को दूर भगा।

चेतना के स्तर

अध्यात्म बल बढ़ाने के लिए हम ध्यान सीखते हैं और उसका अभ्यास करते हैं। अभ्यास द्वारा इच्छा-पूर्ति शक्ति **(भावातीत चेतना)** बढ़ती है और यह इच्छा पूर्ति शक्ति चारों स्तर (four stages) की है:

1. **भावातीत चेतना (Transcendental Consciousness)**
2. **ब्राह्ममी चेतना (Cosmic Consciousness)**
3. **ईश्वरीय चेतना (God Consciousness)**
4. **अद्वैत चेतना (Union Consciousness)**

ब्राह्मी चेतना तक पहुंचने के पहले मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग अपने जीवन को सुखदाई बनाने के लिए करने लगता है। ज्यों ज्यों यह शक्ति बढ़ने लगती है - सत्, चित् और आनन्द, तीनों मन में बढ़ने लगते हैं।

आनन्द वह सुख है - जो सुख की भूख मिटा दे।

जिस प्रकार अपने रसोई घर में, घर के सभी व्यक्तियों के खा लेने के बाद यदि खाना बच जाता है - तो बचे हुए खाने को दूसरे को देने की बात अपने मन में स्वयंमेव आने लग जाती है। इसी प्रकार कितना आसान है - यह समझना कि जिस अनुपात में सुख की भूख मिटने लगती है-दूसरे को सुख देने की बात अपने आप मन का स्वभाव होने लग जाता है। इसी को तो नि:स्वार्थ सेवा कहते हैं।

जो स्वयं; तरह-तरह के दु:खों से पीड़ित है - उसका स्वभाव अपने दु:खों को कम करना होगा, दूसरों को सुख पहुंचाना नहीं होगा। अपने स्वभाव के विपरीत प्रयास हमारे उत्थान की गति को धीमा कर देगा। स्पष्ट है कि

'ध्यान' (Meditation) ही सेवा के भाव का आधार है। पहले तो हमारी क्षमता बढ़ती है - दूसरे यह कि हमारा स्वभाव अन्दर से बदल जाता है। स्वभाव सेवा परायण हो जाता है।

स्वाभाविक है कि शुरू में हम अपनी समस्याओं को दूर करने की कोशिश करेंगे ही। जैसे ही हम अपनी समस्याओं से परे होने लगते हैं-हमारी इच्छा पूर्ति शक्ति दूसरों की समस्या दूर करने में इसलिए लग जाती है; क्योंकि अपने जीवन में इस शक्ति के उपयोग की जरूरत ही नहीं रह जाती। ज्यों ज्यों मनुष्य **ब्रह्मी चेतना** की

ओर बढ़ता है - वह अपनी इच्छा-पूर्ति शक्ति द्वारा क्रियाओं के क्षेत्र में व्यस्त होकर दूसरों के जीवन को संवारने में लग जाता है। **ब्रह्मी चेतना** की अवस्था तक ईश्वरीय शक्ति (लीला शक्ति) के अधार पर क्रियाओं के क्षेत्र में सक्रिय होती है। उसका आत्मबल **ईश्वरीय चेतना** के स्तर का होने लगता है। ईश्वर का ध्यान सीखते समय हम लोगों ने देखा था कि इसके अभ्यास से मनुष्य का वातावरण भी शुद्ध होता है।

वातावरण की शुद्धि वातावरण की सारी क्रियाओं में व्यवस्था लाती है। वातावरण की अशुद्धि ही वातावरण की सारी अव्यवस्था का कारण है।

आज केवल हमारे देश में ही नहीं, बल्कि सभी देशों के वातावरण में तरह तरह की अव्यवस्था के समाचारों से ही अखबार भरे रहते हैं। ध्यान में कितनी बड़ी ताकत है? यदि एक मनुष्य सौ मनुष्यों को सुखदायी नहीं बना सकता - तो कम से कम अपने परिवार को नि:सन्देह सुखदायी बना ही सकता है। हम तो यह कहेंगे कि यदि किसी कुल में केवल एक मनुष्य भी अच्छी तरह ध्यान करने लगे - तो दो चार दस वर्षों के भीतर उस कुल के सभी व्यक्तियों के बीच एक सुखदायी वातावरण पैदा हो जाएगा। पति, पत्नी, भाई, माँ, पिता और बच्चों के बीच आज के समाज में जो कलह चारों ओर दिखाई पड़ता है - वह धीरे धीरे कम होने लगेगा और हम रामराज्य की स्थापना की ओर फिर से मुड़ने लगेंगे।

सेवा से संतुष्टि कैसे मिले ?

सेवाएं समाज में हमेशा से व्यक्तिगत और प्रशासनिक दोनों स्तरों पर होती रही हैं। खोज करने की बात तो केवल यह है कि ये सेवाएं इतनी प्रभावशाली क्यों नहीं हैं कि हम इनसे सन्तुष्ट हो जाएं? हममें कहां पर; क्या कमी है और कहां पर सुधार की आवश्यकता है? सिद्धांत की बात तो केवल इतनी है कि सेवाओं की क्षमता का स्तर क्या है? यदि क्षमता का स्तर केवल शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति, रुपये पैसे की शक्ति या समाज के पद की शक्ति, या इन्हीं स्तरों की और शक्तियां हैं - तो सफलता सन्तुष्ट करने वाली नहीं हो सकती। कारण केवल यह है कि ये सारी साधनाएं क्रियाओं के क्षेत्र की होती हैं और ये क्रियाएं कभी भी व्यक्तिगत अहं (Ego) से ऊपर नहीं होतीं।

आत्मबल के माध्यम से जो सामाजिक सेवाएं होती हैं:
वे अहं से परे होती हैं।

यही कारण है कि ऐसी सेवाओं की प्रतिक्रिया सेवा करने वाले के जीवन को दु:ख से परे कर देती हैं। इसके विपरीत छोटे स्तर (below standard) की सेवा करने वाले का जीवन कभी दु:खों से परे नहीं हो पाता।

मनुष्य जब 'ध्यान की साधना', में लगता है-
तो सबसे पहले अपना घर ही ठीक होता है।

जब कुछ वर्षों की साधना से अपने घर के प्राणी सुख और शांति से रहने योग्य हो जाते हैं-केवल उसके बाद ही किसी समाज या संगठन के स्तर की सेवाओं का प्रश्न उठता है, या देश सेवा की बात मन में उठती है।

लक्ष्य प्राप्ति

ईश्वर का दर्शन हर समय होता रहता है। ईश्वर केवल एक है। अर्थ यह निकला कि **ईश्वरीय चेतना** और **अद्वैत चेतना** की अवस्था में मनुष्य को हर चीज में केवल एक ही ईश्वरीय तत्व दिखाई पड़ता है। इसीलिए इस चेतना का नाम **अद्वैत चेतना** पड़ा-सब में ईश्वर की उच्च कोटि की अवस्था है। जो दूसरों को ध्यान सिखाने लगते हैं - वे समाज के अन्दर ईश्वर सेवा से सम्बन्धित शिक्षा का बीज बोते हैं। वे आगे चलकर इस कार्य को **ब्राह्मी चेतना, ईश्वरीय चेतना** या **अद्वैत चेतना** के स्तर पर करने लगते हैं। ऐसे काम का बीज बोना केवल **ईश्वरीय चेतना** या **अद्वैत चेतना** के महात्माओं का होता है। जो इस तरह की सेवाओं में व्यस्त हैं - उनके जीवन में इतने ऊंचे स्तर की सेवा की प्रतिक्रिया होगी और धीरे धीरे पूरे समाज की सामूहिक चेतना (collective consciousness) के स्तर की प्रतिक्रियाएं उनके जीवन में सुखदायी फल लेकर आने लगती हैं। इसी कारण ऐसे लोग अमर हो जाते हैं। हम चाहे जो साधना लेकर चलें-यदि साधना को शिक्षा का रूप दे दें-कहने का अर्थ यह है कि यह हमेशा ही याद रहे, कि हमारी साधना का स्तर दिन प्रतिदिन इस तरह उठे - जैसे किसी स्कूल में पढ़ने वाला लड़का धीरे-धीरे पहली कक्षा से एम.ए., एम.एस.सी. की ओर चलता है।

तो जीवन की कोई भी साधना हमें जीवन के सर्वोच्च स्तर (Highest Standard) तक ले जाने में सफल हो सकती है।

लेकिन यदि किसी साधना की कुछ खास क्रियाओं को ही साधना मान लें और जीवन भर उसी क्रिया को दुहराते रहें - तो यह जीवन भर किसी एक ही दर्जे (Standard) में पड़े रहने के समान हो जाता है और ऐसे मनुष्यों का जीवन, जीवन के उतार चढ़ाव से कभी मुक्त नहीं हो पाता। संत कबीर के अनुसार-

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहा संतो ! क्यों पाइए, दुर्लभ हरि दीदार॥

इस राखी में संत कबीर ने एक सुन्दर रूपक के द्वारा अपने भाव को व्यक्त किया है। पथिक (मन) का घर (Home) बहुत दूर है और मार्ग केवल लम्बा ही नहीं है, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचना अत्यन्त दुर्लभ है।

घर (Home) पहुंचने के समान प्रभु की प्राप्ति अपना लक्ष्य है।

East or West : Home is the Best. अनेक योनियों में भ्रमण करने पर जीव को यह अवसर मिलता है कि वह प्रभु की ओर अग्रसर हो। इसीलिए मार्ग को लम्बा कहा गया है। माया (गलतफहमी) के कारण यह मार्ग अत्यन्त दुस्तर भी है। राग द्वेष, लोभ, मोह आदि बटमार हैं - जो साधक-पथिक की आध्यात्मिक यात्रा में अनेक विघ्न उपस्थित करते हैं। संत कबीर कहते हैं कि-

हे संतो ! कहो, ऐसी स्थिति में कोई अपने लक्ष्य तक कैसे पहुंचेगा?

ऐसी दशा में प्रभु का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिए चेत जाओ और 'ध्यान योग की सहायता', (सरल मार्ग) से विघ्नों से बचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त हो जाओ। ❑

अंत:करण

—प्रस्तुति : श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

मन, इन्द्रियां और बुद्धि; हमारे अंत:करण हैं। करण का अर्थ है-औजार। अर्थात् ये तीन अस्तित्व; पराजगत को शक्तिशाली बनाए रखने में सक्षम हैं और ये पराजगत से इन्द्रिय जगत में पराजगत की शक्ति ले जाने वाले औजार हैं। इन तीन औजारों में 'बुद्धि की गतिशीलता'; मात्र विषयों के जगत में सीमित है-जो इन्द्रियों की गतिशीलता, मन और इन्द्रियजगत की वस्तुओं में सम्पर्क स्थापित करने के

लिए हैं।

केवल मन, सृष्टि में ऐसा अस्तित्व है - जो पराजगत और इन्द्रियजगत में विचरण करने के साथ साथ 'परा से पराजगत' में भी विचरण करने में सक्षम है। हम यह भी जानते हैं कि पेड़ की डालियों का आधार, पेड़ का तना है। पत्तियों का आधार, पेड़ की डालियां हैं इत्यादि। बिल्कुल इसी प्रकार से शरीर का आधार, स्नायुसंस्थान है।

स्नायुसंस्थान (Nervous System) का आधार; 'पराजगत की शक्ति' है।

लेकिन पराजगत का आधार; 'परा से पराजगत' है।

'परा से पराजगत' की उत्पति करने वाला; स्वयं 'परा से पराजगत' है।

इसलिए इस क्षेत्र के तत्व ही जीवन का मूल सत्य है और इस क्षेत्र का सत्य ही; पूरे सूक्ष्म और स्थूल जगतों का आधार है।

ईश्वर; 'होनी की शक्ति' के रूप में 'सर्वशक्तिमान शक्ति' है।

भले ही इन्द्रियजगत; प्राणियों, पेड़ पौधों, निर्जीव वस्तुओं और सूक्ष्म शक्ति से भरा हो; एक साधारण मनुष्य भी आसानी से समझ लेता है कि ऐटम जैसे सुक्ष्मकण में सूक्ष्मतम शक्ति के अलावा, किसी और की सम्भावना नहीं है। इतना समझ लेने वाला यह समझ ही लेगा कि

'परा से पराजगत' के तत्व से बड़ी शक्ति कहीं नहीं है।

इस पूरे क्षेत्र की सामुहिक शक्ति सबसे बड़ी शक्ति होगी।

यह शक्ति; 'होनी की शक्ति' के रूप में होगी।

इस क्षेत्र की शक्ति प्राप्त करने की शक्ति; मात्र उस अस्तित्व में होगी - जो इस क्षेत्र तक पहुंच सके और हम पहले ही ऊपर देख चुके हैं कि पूरी सृष्टि में मात्र 'मन'; ध्यान (मैडिटेशन) द्वारा इस क्षेत्र में भी विचरण करने में सक्षम है।

असली बन्दगी

देख बन्दे तेरी यह बन्दगी,
तू किसी गरीब को कभी सताया न कर।

न किसी पे जरा सी दया कर सके,
तो जुल्म भी किसी पे तू ढाया न कर॥
जिन्दगी है चार दिन, कुछ ध्यान करके जा।
इन्सानियत का नाम, ना बदनाम करके जा॥
मेरा मालिक तो राजी है अगर, रोता हंसाए तू ?
किसी भूखे को दे रोटी, अगर उसको रिझाए तूं ?
किसी का छीन कर खाना, तू बल्कि दान करके जा।
इन्सानियत का नाम, ना बदनाम करके जा॥
अगर रास्ते में कांटें हैं, उठाना काम है तेरा।
कोई गिरता हो राह पर, बचाना काम है तेरा॥
बुराइयां बदले नेकी का, भुगतान करके जा।
इन्सानियत का नाम, ना बदनाम करके जा॥
जिन्दगी है चार दिन की, कुछ ध्यान करके जा।
मानव तन का चोला, ना बदनाम करके जा॥

(12.1.1918-
8.2.2008)

जीवन का आधार

✍ **महर्षि श्री महेश योगी**

सारे जीवन की समस्याओं के आधार पर ही क्षण भंगुर जीवन चल रहा है। इस क्षेत्र में, त्रिगुणात्मक क्षेत्र में रहते हुए- उन समस्याओं का हल है ही नहीं। इसलिए कि जीवन का स्वभाव ही ऐसा है कि उन मौलिक समस्याओं पर ही आधारित होता है,

तब भगवान ने क्या किया ?

अर्जुन को दो क्षेत्रों का उपदेश किया; क्योंकि इस क्षेत्र में जो जीवन संसार का है- वह तो समस्याओं पर ही अवलम्बित है- समस्या विहीन हो ही नहीं सकता। इसलिये क्या किया-एक दूसरे जीवन का क्षेत्र दिखाया जो त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रजो, एवं तमो गुण) नहीं है -

नित्य है, अविनाशी है, अखंड है, व्यापक है;

जहां कि समस्यायें कुछ हो ही नहीं सकतीं;

इसलिये कि वह त्रिगुणात्मक नहीं है; पंचभूतात्मक नहीं है। इसलिये उस क्षेत्र का प्रभाव इस क्षेत्र में लाकर ही समस्याओं के बीच में रहते हुए भी उसे समस्याओं से मुक्त किया।

समस्यायें तो मिट ही नहीं सकतीं; जब तक जीवन है।

इसलिये यह युक्ति थी भगवान के उपदेश की कि कुछ ऐसा करो कि वह त्रिगुणातीत भवातीत विशुद्ध सच्चिदानन्द का व्यापक क्षेत्र है; उसको इसमें ले आओ। वह इसमें बराबर पिरोया हुआ है। केवल उसका बोध नहीं है। जब बोध नहीं है - तो उसका लाभ नहीं हो रहा।

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे वन माहीं।

ऐसे घट घट में राम हैं, दुनियां देखे नाहीं॥

खजाना घर में भरा है-लेकिन यदि निकाला नहीं जा रहा- बोध नहीं है; भूल गये हैं - तो उससे लाभ नहीं हो रहा। वह नित्य शाश्वत अखण्ड क्षेत्र है - जो सबमें व्यापक है। केवल उसका भगवान ने बोध कराया है। उस युक्ति से काम लिया; कि जीवन समस्या विहीन हो ही नहीं सकता; तो फिर ऐसा कुछ करें; कि समस्याओं के क्षेत्र में एक बिना समस्या का क्षेत्र पिरो दें। उसका बोध हो जाय - जो जीवन की सहज स्वाभाविक स्थिति है। इस नश्वर क्षेत्र में वह अविनाशी क्षेत्र पिरोया हुआ है; और दोनों को मिला कर जीवन बना है। जीवन का ऐसा जो सहज स्वाभाविक स्वरूप है - उस स्वरूप को दिखा दिया। यही श्री मद् भगवद् गीता के उपदेश का मूल तत्व था।

अर्जुन के प्रश्न ऐसे थे कि उनका उत्तर हो ही नहीं सकता?

इस क्षेत्र में रहते हुए, संसार के क्षेत्र में रहते हुए अर्जुन ने जो धर्म सम्बन्धी प्रश्न उठाये हैं; उनका उत्तर तब मिलता है - जब धर्म सत्ता से मन जुटता है- यह रहस्य जो भगवान ने गीता (2.11) में हंस कर कह दिया।

''अशोच्यानन्व शोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे'

एक न सोचने योग्य को तुम सोच रहे हो और बुद्धिमानों जैसी बड़ी बड़ी बात करते हो। इसलिये कि धर्म सत्ता से अभी तुम्हारा सम्बन्ध तो हुआ ही नहीं है। धर्म के

प्रश्न कर रहे हो-धर्म की बात कर रहे हो।

धर्म सत्ता कौन सी है ?

वह जो सब को (सब विश्व को) धारण करे। जैसे फूल को धारण करने वाला 'रस' है। पत्ता, फल, फूल, डाली सब को धारण करने वाला 'रस' ही है। ऐसे ही यह समस्त सृष्टि ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली-वही विशुद्ध चेतना ब्रह्म स्वरूप सच्चिदानन्द व्यापक चेतना है। तो वह चिदानन्द व्यापक सत्ता धर्म का स्वरूप है।

जिसका मन उससे नहीं जुटा - वह धर्मी कहां हुआ?

जो मन भावातीत (Transcendental) नहीं हुआ, धर्म सत्ता से नहीं लगा: तब वह धर्मी कहां हुआ? और धर्मी हुए बिना; धर्म की बड़ी लम्बी लच्छेदार बातें करना और समस्यायें खड़ी कर देना; कि 'भीष्म पितामह को कैसे मारूँ? ये पूज्य हैं' आदि।

भगवान ने कहा-क्या बात करता है लड़कपन की?

जिस क्षेत्र में प्रवेश नहीं-जिसका बोध नहीं, उसके लिए लम्बे-लम्बे सिद्धांत प्रस्तुत कर रहा है- भ० गीता (2.11 व 2.45) के अनुसार :

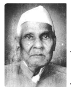

''अशेच्यानन्व शोचस्त्वं'' और कहा चलो ''निष्त्रैगुण्यो भवार्जुन''

तीनों गुणों से परे हो जाओ-निस्त्रगुण्य होने से क्या होगा? मालूम पड़ेगा कि जिनको हल न होने वाली समस्यायें मानता है-15 मूल समस्यायें जिनका यह जीवन ही बना है - जो ऐसे हल न होने वाली समस्यायें हैं। फिर यदि बाजार में इतना फंसाव हो गया है; कि गुत्थी नहीं सुलझती तो कहते हैं; बाजार से हटो-बैंक में चलो, वहां बैठकर यहां की समस्या हल करेंगे। जिस क्षेत्र की समस्यायें होती हैं; उस क्षेत्र में इधर-उधर करके हल हो जाएं तो हो जाएं, पर यदि देखते हैं; कि हल नहीं होतीं, तो दूसरे क्षेत्र में जाते हैं। उधर से सहायता लेकर हल करते हैं।

यही तो होता है-एक देश दूसरे देश से लड़ाई करता है; और जब आपस में

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-18 : सभी कर्म की प्रतिक्रिया, होती निश्चय जान।

सब स्तर से लौटती, सकें न हम पहचान॥

हमारे सभी कर्मों की प्रतिक्रिया अवश्य होती है - किस क्रिया की प्रतिक्रिया कब होती है-यह हम नहीं जान पाते। कौन से कर्म की वह प्रतिक्रिया है - यह जानना भी कठिन है। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है - यह भौतिकवादी और आध्यात्मवादी दोनों ही मानते हैं। कुछ भौतिकवादी (बुद्धिवादी) शिक्षक इस नियम के आधार पर; यह सिखाने लगे हैं कि यदि तुम किसी को सुख दोगे-तो सुख देने में तुम्हें चाहे जितना दुख अपनाना पड़े, तुम्हारे जीवन में सुख लौटकर जरूर आयेगा। इसी प्रकार दुख अपनाने से दुख भागेगा। इसी सिद्धान्त के आधार पर साधक दुख को अपनाने और सुख देने का प्रयासपूर्ण अभ्यास करते हैं। लेकिन सुख देते समय हम यह बात कैसे भूल सकते हैं कि; सुख तो केवल इसलिये दे रहे हैं कि हमें सुख मिले। ऐसी साधना अपनाने पर जब वे व्यावहारिक जीवन में यह देखते हैं कि जिसे मैंने सुख दिया-उसी के द्वारा मुझे दुख मिलने लगा, तो वे असमंजस में पड़ जाते हैं। समाज में बहुत से लोगों को यह शिकायत करते हुए सुना जाता है कि जिसके लिए मैंने बहुत कुछ किया-वही अब मेरे लिये कुछ भी करने को तैयार नहीं है या मेरा विरोध करता है।

बाहर के जगत का फैलाव अनन्त स्तर तक है।

मनुष्य द्वारा क्रियाएं की जाती हैं। उनसे वायुमण्डल में तदनुरुप तरंगें उत्पन्न होती हैं। ये तरंगे सृष्टि के अनन्त स्तरों से टकरा कर अनन्तकाल तक प्रतिक्रिया के रूप में क्रिया करने वाले के पास लौटती हैं। इसलिये सुदूर के चांद, तारों तथा अन्य ग्रहों के स्तरों से टकराकर लौटने वाली प्रतिक्रियाएं, इसी जन्म में क्रिया करने वाले के पास लौट आवेंगी या उनके लौटने तक मनुष्य दूसरा जन्म ले लेगा-नहीं कहा जा सकता।

बुद्धि की क्षमता सीमित होती है और वह एक सीमा तक ही तर्क वितर्क और विश्लेषण द्वारा निर्णय ले सकती है। इसलिये बुद्धि के अनुशासन के आधार पर बनाये गये सिद्धान्त, जीवन की समग्रता के परिपेक्ष्य में सत्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

क्रिया की प्रतिक्रिया तो अवश्य होती है। लेकिन क्रिया के बाद प्रतिक्रिया के लौटकर आने का अन्तराल तथा जिस स्तर से टकराकर लौटती है - उसका प्रकार इतना अनजाना हो जाता है कि हम प्रतिक्रिया के प्राप्त होने पर यह समझने में

असमर्थ रहते हैं कि कौन सी क्रिया; क्रिया है और कौन सी प्रतिक्रमा।

दोहा-19 : छूटे तीर समान हम, सकें न रोक प्रभाव।
जल-लकीर सम ग्रहण कर, मेटें सकल तनाव॥

काम करने के बाद वह छोड़े गए तीर जैसा होता है। उसके फल अर्थात् प्रतिक्रिया से हम बच नहीं सकते। परन्तु ध्यान साधना द्वारा, पानी पर खींची गई रेखा के समान उसे बहुत थोड़े में भोगकर हम तनावरहित हो जाते हैं। अनन्त दूरी और स्तरों से लौटती हुई प्रतिक्रियाओं का समय और रूप बताना और समझना असंभव है। क्रियाएं तो धनुष से छूटे हुए तीर के समान होती हैं - जिन्हें गलत समझने के बाद वापिस नहीं लिया जा सकता। पिछले जीवन में और इस जीवन में भी सही ज्ञान न होने तक - हम ऐसी अनन्त क्रियाएं कर चुके होते हैं; जिनकी सुखद अथवा दुखद प्रतिक्रियाओं से बचा नहीं जा सकता। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी दशा में वर्तमान को दुख रहित अर्थात् सुखी बनाने का कोई उपाय है अथवा नहीं ?

यह निश्चित है कि हम पिछली क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के स्तर पर कुछ नहीं कर सकते - पर उनकी दुखद प्रतिक्रियाओं से तो बच सकते हैं, यह निश्चित है।

मन ही सुख और दुख का भोक्ता है।

हम अपने मन को ध्यान के अभ्यास द्वारा ब्रह्म की अग्नि में तपा कर; ऐसा निखार सकते हैं और इतना शक्तिशाली बना सकते हैं - जिससे उस पर किसी प्रतिक्रिया का प्रभाव इतना और ऐसा ही पड़े - जैसा जल पर खींची गई लकीर का होता है - अर्थात् प्रतिक्रिया आई और क्षणों में निष्प्रभावी होकर विलुप्त हो गई। उसका सुख अथवा दुख अनुभव करने का समय ही नहीं रहा।

प्रतिक्रियाओं का दुख देने की दृष्टि से निष्प्रभावी हो जाना ही;
तनाव से मुक्ति है और तनाव रहित जीवन ही सुखमय जीवन होता है।

दोहा-20 : जग के कर्म-प्रभाव के, मोटे चार प्रकार।
पत्थर, मिट्टी, रेत, जल, इनके सरिस अधार॥

प्रतिक्रियाओं के प्रभाव मन पर चार प्रकार के होते हैं। मन पर प्रभाव पत्थर की लकीर, मिट्टी की लकीर, रेत पर लकीर, या जल पर लकीर जैसी होती

है। प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में मन पर पड़ने वाले प्रभाव को मन की अवस्था के अनुरूप मोटे तौर पर (मात्र समझने के लिए) चार प्रकार का कह सकते हैं। प्रतिक्रियाओं का प्रभाव मन पर पड़ता है, मन आधार है। अत: देखना यह है कि मन पत्थर के समान है, मिट्टी के समान है, रेत (बालू) के समान हैं अथवा जल के समान है।

दोहा-21 : क्रमश: मृदुतर है सभी, सुखकर जीवन हेतु।
जल सम पड़े प्रभाव ही, सिद्धि प्रमाणक केतु॥

ये चारों प्रभाव (लकीरें), क्रमश: सरल हैं। पत्थर पर पड़ी लकीर से मिट्टी पर पड़ी लकीर सरल है। इसी प्रकार मिट्टी (रेत) पर और रेत से जल की लकीर मिटाना सरल है। किसी भी क्रिया का बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ना ही सिद्ध अवस्था कहलाती है। मन यदि पत्थर के समान कहा है-तो प्रतिक्रियाओं का प्रभाव बहुत अधिक समय तक बना रहेगा। यदि मिट्टी के समान है-तो प्रभाव पहले से कुछ कम देर तक रहेगा। यदि बालू के समान है-तो प्रभाव और कम देर तक रहेगा। लेकिन मन यदि जल के समान है - तो प्रभाव पड़ते ही मिट जायेगा, अर्थात् उनसे होने वाले सुख दुख का प्रभाव क्षणजीवी या नगण्य होगा। जिसका मन साधना द्वारा इस प्रकार का हो जाता है; वे सिद्ध कहलाते है। मन पर किसी भी प्रतिक्रिया का नगण्य प्रभाव पड़ना, सिद्ध होने का अकाट्य प्रमाण है।

दोहा-22 : छाप अमिट हो शिला सम, महासक्त अपकर्ष।
दर्पण सम बिगड़े-बने, अनासक्त आदर्श॥

पत्थर पर पड़ी लकीर जैसा प्रभाव महान आसक्ति और पतन होता है। दर्पण के सामने से हटते ही छाया (फोटो) हट जाने के प्रभाव को आदर्श अनासक्ति कहते हैं। यदि हमारे मन पर बाह्य जगत की क्रियाओं का प्रभाव पत्थर पर खींची गई लकीर के समान दीर्घ काल तक रहता है - तब समझना चाहिए कि हम संसार में बहुत आसक्त हैं, लिप्त हैं, और यह पतन का सूचक है। महान आत्माओं - जिन्हें महात्मा कहते हैं; के मन पर बाह्य क्रियाओं की छाप या प्रतिक्रियाओं का प्रभाव - जल पर खींची गई लकीर के समान; तभी तक रहता है - जब तक क्रियाओं या प्रतिक्रियाओं का अस्तित्व रहता है। इनके समाप्त होते ही; उनका प्रभाव (छाप) भी मिट जाता है। जैसे-जब तक हम किसी दर्पण के सम्मुख रहते हैं, तभी तक उसमें अपनी प्रतिच्छाया दिखायी देती है और उसके सामने से हटते ही प्रतिच्छाया मिट जाती है।

ऐसी स्थिति अनासक्त व्यक्ति की होती है और यह एक आदर्श स्थिति है।❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-श्री राकेश गर्ग, केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001
मोबाईल : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 4 से 5 बजे सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक (Practical) और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 3 बजे से सायं 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER